सहज कविता

त्रैमासिक

जनवरी-मार्च 1995

वर्ष 2 अंक 5

क्रम

अंजनी कुमार दुबे 'भावुक' की कविताएँ	—वेदप्रकाश 'अमिताभ'	2
मुक्तक	—अमिताभ	2
सहज कविता और भाषा	—सम्पादकीय	3
ग़ज़ल	—आदर्श मदान,	8
	सुरेन्द्र चतुर्वेदी	8
	चिरंजीत	9
	अंजनी दुबे 'भावुक'	9
हाइकु	—मुकेश रावल	10
कविताएँ	—जोगेश्वरी साहू	10
	—कुंजुण्णि	10-11
	—अंजनी कुमार दुबे 'भावुक'	11-12-13
दोहे		
	—देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र'	14
	—सुधेश	14
सहज कविता की परम्परा	—भगत सिंह	15-16

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक श्रीमती सुशीला शर्मा द्वारा 1335 पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067 से प्रकाशित। तरुण प्रिंटर्स, 9267 पश्चिमी रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032 द्वारा मुद्रित। अवैतनिक सम्पादक—डॉ० सुधेश

मूल्य छः रुपये, वार्षिक चौबीस रुपये। संस्थाओं के लिए तीस रुपये। आजीवन सदस्यता—पांच सौ रुपये।

अंजनी कुमार दुबे 'भावुक' की कविताएँ

श्री भावुक की कविताओं को पढ़ते हुए लगता है कि परिवेश से उनका निरंतर सम्पर्क है, समय की विसंगतियाँ उनसे अनदेखी नहीं हैं। उनका संवेदनशील मन जब आवेश से भर उठता है तो आसपास की बेहूदगियों और असंगतियों पर टिप्पणी कर बैठता है। 'शासन एक तंत्र है', 'संसद एक बड़ी आरामगाह' जैसे जुमले आकर्षक हैं, लेकिन इनका प्रभाव अधिक टिकाऊ नहीं है। लेखक व्यवस्था के अन्तर्विरोधों पर जो टिप्पणी करता है, वह सतही होने से बहुत गहरे प्रभावित नहीं करती। लेकिन जहाँ कवि सतही और हड़बड़ी में की गयी प्रतिक्रिया से बचा है, वहाँ कविता में विचार और आवेग संश्लिष्ट रूप में व्यक्त हुए हैं।

चीखों को
मत बदलने दो आँसुओं में
संभव हो तो उन्हें अंगार बना
बिखेर दो लाल मिट्टी में
कम से कम कुछ तो उगेगा
चाहे नागफनी

अपना 'प्रतिवाद' दर्ज कराते हुए कवि की चिन्ता है कि जनसंघर्ष कहीं हिंसक रूप न धारण कर ले। 'बैलट' की जगह 'बुलेट' ले ले, इसके पहले ही कुछ होना जरूरी है। इसके साथ कवि व्यापक अवमूल्यन से भी क्षुब्ध है। गाँवों में भी प्रेम, लगाव, सहानुभूति दुर्लभ हो चली हैं। कवि इनकी वापसी चाहते हुए अपने सकारात्मक दृष्टिकोण का परिचय देता है—

आज अजनबी-सा सहमा-सहमा मन है,
कब हमदर्दी लौटेगी अपने गाँव में?

—वेदप्रकाश अमिताभ (अलीगढ़)

मुक्तक

बहुत-बहुत मन था जीवन में हम भी रचें पवित्र ऋचाएँ,
हम भी लिखें गीत गोविन्दम् विनय पत्रिकाएँ लिख जाएँ।
लेकिन घने अँधेरे में पड़ दृष्टि हुई विचलित कुछ ऐसी,
लिखने बैठे तो लिख डालीं ब्रह्मराक्षसों की पीड़ाएँ।

—वेदप्रकाश अमिताभ

सहज कविता और भाषा

सहजकविता सहज भाषा में लिखी जाती है, इतना कहना काफी नहीं है। प्रश्न उठता है कि सहज भाषा किसे कहा जाए या भाषा में सहजता को कैसे पाया जाए ? यहाँ मैं काव्य-भाषा की सहजता पर विचार करना चाहता हूँ।

किसी भी साहित्यिक विधा की भाषा पर शून्य में विचार नहीं किया जा सकता। भाषा भाव या विचार की अभिव्यक्ति का माध्यम है। अतः भाषा पर विचार करते हुए उसे किसी रचना के कथ्य से काट कर नहीं देखा जा सकता। पर पश्चिम के रूपवादी आलोचक और भाषावैज्ञानिक रचना को केवल शब्द के आधार पर अथवा रचना के पाठ (Text) के आधार पर विश्लेषित करना चाहते हैं। कथ्य का बोध केवल शब्दार्थ के ग्रहण तक सीमित नहीं है। यदि किसी ने कविता में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ को समझ लिया है तो आवश्यक नहीं है कि उसने कविता के कथ्य अथवा कवि के अभिप्रेत अर्थ को भी समझ लिया है। शब्दार्थ ग्रहण किसी रचना को समझने की पहली मंज़िल है, अन्तिम लक्ष्य नहीं। इसीलिए संस्कृत काव्य शास्त्रज्ञ भट्टनायक को अभिधा नामक काव्य व्यापार के साथ भावकत्व तथा भोजकत्व नामक काव्यव्यापारों की उद्भावना करनी पड़ी। पर रूपवादी आलोचकों और भाषावैज्ञानिकों का सारा ज़ोर रचना के अर्थ विश्लेषण पर है अर्थात शब्दार्थ के ग्रहण पर है।

किसी भी साहित्यिक रचना की भाषा का गठन रचनाकार के बोध से सम्बन्धित है। शब्द-सम्पदा के अधिकार से भाषा बाद में समृद्ध होती है, पहले वह रचनाकार के मानस में उसके जगत सम्बन्धी ज्ञान अथवा बोध के स्तर पर समृद्ध होती है। नये शब्दों का जन्म भी जागतिक ज्ञान के विस्तार के साथ होता है। कविता की भाषा की सहजता कुछ भाषागत प्रयोगों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसका घनिष्ठ सम्बन्ध कवि के सहजबोध से भी है। पुस्तकों-शास्त्रों से प्राप्त जागतिक ज्ञान भी ज्ञान की ही श्रेणी में आता है, पर वह बाहर से ओढ़ा गया ज्ञान है। संसार की ठोस परिस्थितियों के घात-प्रतिघात से प्राप्त अनुभवों से यथार्थ का

जो ज्ञान होता है, वह जीवन का सहज बोध कहलाने का अधिकारी है। शास्त्रीय ज्ञान उसे समृद्ध करता है, पर शास्त्रीय ज्ञान में बहुत कुछ छूट जाता है, जिसे सहजबोध से पाना होता है। इस प्रकार काव्यभाषा की सहजता का प्रश्न कवि के सहजबोध से जुड़ा हुआ है। कवि ने जीवन के ठोस यथार्थ को जिस रूप में देखा है, देखा ही नहीं, उसे जिस रूप में भोगा या झेला है, अर्थात उसका जो सहजबोध है, यदि उस की कविता की भाषा उसके सहजबोध के अनुकूल है या उसकी अभिव्यक्ति में सक्षम है तो उसे कविता की सहज भाषा कहा जा सकता है। यथार्थ के सम्यक्ज्ञान के अभाव में अर्थात अस्पष्ट बोध की स्थिति में कवि को कृत्रिम उपायों का सहारा लेकर अतिरिक्त कला के प्रदर्शन की आवश्यकता पड़ती है और तब उसकी भाषा भी कृत्रिम हो जाती है। सीधी बात है कि यदि बात में सच है तो सच का जादू सिर चढ़कर बोलेगा ही। यदि नहीं, तो उस पर लाख झूठ का मुलम्मा चढ़ाते रहो। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने तुलसीदास, सूरदास के भाषा-कौशल पर टिप्पणी करते हुए लिखा था—"जहाँ आत्मानुभूति की प्रधानता है, वहीं अभिव्यक्ति अपने क्षेत्र में पूण हो सकी है, वहीं कौशल या विशिष्ट पदरचना युक्त काव्य शरीर सुन्दर हो सका है। इसीलिए अभिव्यक्ति सहृदयों के लिए अपनी वैसी व्यापक सत्ता नहीं रखती, जितनी कि अनुभूति।" (काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ 44) इस प्रकार अनुभूति की मार्मिकता अभिव्यंजना के कौशल या कला से अधिक महत्वपूर्ण है। सहजबोध ही अनुभूति की मार्मिकता में परिणत होता है। इसी से कविता की भाषा सहज हो पाती है।

कविता तथा सर्जनात्मक गद्य की भाषा शास्त्रीय भाषा नहीं होती। शास्त्रीय भाषा में शब्द के रूढ़ एवं निश्चित अर्थ लिये जाते हैं, जबकि कविता के शब्दों के अर्थ खुले और अनिश्चित होते हैं। वे प्रसंग या आशय के अनुसार निश्चित होते हैं। कविता की भाषा यदि शास्त्रीय भाषा नहीं होती तो क्या वह लोकभाषा या बोलचाल की भाषा के निकट होती है? क्या लोकभाषा या बोलचाल की भाषा को ही सहजभाषा का पर्याय माना जाए? इसमें कोई सन्देह नहीं कि लोकभाषा या बोलचाल की भाषा में एक सहजता मिलती है। पर कुछ आलोचकों का विचार है कि लोकभाषा और बोलचाल की भाषा कविता के काम की नहीं है, भले ही उसमें लोकगीत तथा लोकसाहित्य के अनेक रूप उपलब्ध हों।

साहित्य की भाषा के बारे में सामान्यतः और कविता की भाषा के बारे में विशेषतः एक अभिजातवर्गीय दृष्टिकोण प्रचलित है, जिसके अनुसार कविता की भाषा सामान्य कथन से भिन्न और विशिष्ट होती है। इस दृष्टिकोण के अनुसार लोकसाहित्य को परिनिष्ठित साहित्य से बाहर रखा जाता है और परिनिष्ठित रचनाओं को ही साहित्य के अन्तर्गत रखा जाता है। परिनिष्ठित रचनाएँ वही हैं जो स्तरीय, परिनिष्ठित भाषा में लिखित हों। इस प्रकार लोकसाहित्य और परि-

निष्ठित साहित्य का अन्तर भाषागत ठहरता है। तब विशिष्टता और परिनिष्ठता के ये दावेदार लोकभाषा को कविता की भाषा कैसे मान सकते हैं ? लोकगीतों के तो ये प्रशंसक हैं पर लोकभाषा से बिदकते है, क्योंकि उसमें ग्रामीणता का दोष है। फिर संस्कृत काव्यशास्त्र में प्रमाण मौजूद है कि 'ग्राम्यता' को काव्यदोषों में गिनाया गया है। बहुत पहले अंग्रेजी आलोचक और प्रसिद्ध निबन्ध लेखक फ्रांसिस बैकन ने 'Of the Poetry' शीर्षक निबन्ध में कवि की भाषा को 'Kingly language' की संज्ञा दी थी अर्थात एक सम्भ्रान्त विशिष्ट वर्ग की भाषा।

साहित्य के जनतन्त्रीकरण के युग में कविता की भाषा के बारे में अभिजात-वर्गीय उक्त दृष्टिकोण अब भी कम प्रचलित नहीं है। यहाँ तक कि अनेक जनवादी और प्रगतिशील कवियों के अभिजात वर्ग विरोधी उद्‌गारों के बावजूद उनकी कविता की भाषा पर आभिजात्य का प्रभाव दिखाई देता है। उनका चिन्तन जन-वादी है पर उनकी कविता की भाषा शिक्षित विशिष्ट वर्ग की है। अभिजात वर्ग के प्रतिनिधि अज्ञेय तो साफ कहते थे कि वे आम पाठक के लिए नहीं लिखते, विशिष्ट वर्ग के लिए लिखते थे। उनकी लीक पर चलने वाले अनेक कवि और आलोचक आज भी कविता की भाषा को विशिष्ट वर्ग की विशिष्ट भाषा के रूप में देखते हैं। वे लोकभाषा को कविता की भाषा कैसे मान सकते हैं ? डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लोकभाषा की जगह 'सीधी-सादी भाषा' तथा 'बोलचाल की भाषा' शब्दावली का प्रयोग करते हुए कविता की भाषा के बारे में लिखा—"केवल बोल-चाल की भाषा से निर्मित साहित्य लोकसाहित्य होगा, क्योंकि लोकगीत तथा लोककथा दोनों में भाषा का सामान्य प्रयोग होता है। पर शिष्ट साहित्य भाषा के सृजनात्मक रूप का प्रयोग करता है। इस सृजनात्मक रूप में लेखक प्रतीक और विम्बविधान के माध्यम से अपनी बात कहता है।" (भाषा और संवेदना, पृष्ठ 40) चतुर्वेदीजी का आग्रह काव्यभाषा में प्रतीक और विम्ब के प्रयोग से उत्पन्न विशिष्टता पर है। कविता का कोई स्थिर और अन्तिम स्वरूप नहीं होता। कविता का एकरूप वह हो सकता है जिसकी भाषा में प्रतीकात्मकता और विम्बा-त्मकता हो (आवश्यक नहीं कि दोनों गुण एक साथ हों), पर ऐसी कविता भी सम्भव है कि जिसमें न कोई प्रतीक हो और न कोई विम्ब हो, पर वह उत्कृष्ट कविता का नमूना हो। ग़ालिब का एक शेर है—

मौत का एक दिन मुअय्यन है मगर
नींद क्यों रात भर नहीं आती।

इन पंक्तियों में न कोई प्रतीक है और न विम्ब है (मौत या नींद का कोई विम्ब नहीं उभरता), पर मौत की निश्चितता की ओर संकेत करके एक जीवन सत्य को सादगी से कह दिया गया है। यह सीधी-सादी भाषा क्या कविता में नहीं

ढली ? मीर, सौदा, नज़ीर, फिराक़ के दर्जनों शेर प्रस्तुत किये जा सकते हैं, जिनमें सीधी-सादी भाषा उत्कृष्ट कविता की भाषा बन गई है।

मैंने ऊपर कहा कि कविता का कोई स्थिर स्वरूप नहीं होता। इसका निहितार्थ यह भी है कि कवित्व किसी विशेष शब्द या शब्द प्रयोग की विशेष विधि (अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति, प्रतीक, विम्ब आदि) में निहित नहीं होता बल्कि वह शब्दों के घटाटोप में उसी प्रकार चमक जाता है जैसे बादलों में बिजली चमक जाती है। जिस प्रकार बादलों के पारस्परिक घर्षण से बिजली की चमक और कड़क निकलती है, उसी प्रकार कविता के शब्दों के जमघट में अधिक सार्थक शब्द-प्रयोग के माध्यम से कवित्व उद्भासित हो जाता है। कविता के प्रत्येक शब्द में कवित्व नहीं होता, बल्कि वह शब्दों के अर्थगर्भित समन्वय और भाव तथा अभिव्यंजना के सन्तुलन में निहित होता है। इस प्रकार कविता की भाषा की सृजनात्मकता केवल प्रतीक और बिम्ब पर ख़त्म नहीं हो जाती।

डॉ० चतुर्वेदी ने उक्त पुस्तक में संकलित महत्वपूर्ण निबन्ध 'काव्यभाषा का स्वरूप' में आगे लिखा है—"बोलचाल की भाषा···पर काव्यभाषा या साहित्यिक भाषा आधारित तो हो सकती है पर···अपने-आप में काव्यभाषा नहीं बन सकती।" (पृष्ठ 76) काव्यभाषा कविता में प्रयुक्त भाषा से अलग और कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं है। जब बोलचाल की भाषा काव्यभाषा का आधार बन सकती है, तब जो भाषा निर्मित होगी, उसे काव्यभाषा के अतिरिक्त और क्या कहा जाएगा ? अपने-आप में तो प्रतीक और विम्ब भी काव्यभाषा नहीं हैं। यों तो शब्द मात्र अपने आप में काव्यभाषा नहीं है। उक्त उद्धरण में बोलचाल की भाषा के महत्व को स्वीकारते हुए भी उसे काव्यभाषा का दर्जा नहीं दिया गया है। यहाँ एक अन्तर्विरोध है, जो काव्यभाषा के प्रति एक अभिजात दृष्टिकोण की देन है।

आशय यह है कि लोकभाषा या बोलचाल की भाषा भी काव्यभाषा का दर्जा पा सकती है और उसे सहजभाषा भी कह सकते हैं। लोकभाषा या बोलचाल की भाषा में जो सहजता मिलती है, उसे ग्रामीण, अशिष्ट कह कर छोड़ देना आज के युग की कविता के लिए हितकर नहीं हैं। लोकगीतों की भाषा सीधी-सादी हो सकती है, पर उसमें भावों की जो मार्मिक शक्ति है उससे साधारण शब्द भी असाधारण हो जाते हैं। उनकी लोकप्रियता का यही कारण है।

पर कविता की भाषा पर कोई एक लेबिल चिपकाना उपयुक्त नहीं है, चाहे वह लोकभाषा या बोलचाल की भाषा का लेबिल हो (यद्यपि उसमें सहजता के लिए अधिक गुंजाइश होती है) क्योंकि कविता की भाषा विषयवस्तु के अनुसार अपना रूप बदल लेती है। प्रत्येक कवि एक प्रकार की कविताएँ नहीं लिखता। इसी प्रकार वह अपनी सब कविताओं में एक-सी भाषा नहीं लिखता। वह अनेक प्रयोग

करता है। फिर भी कविता के पारखी किसी कवि की कविताएँ पढ़कर उसकी भाषागत रुचियों एवं संस्कारों को पहचान लेते हैं। किसी कवि की भाषा की विशिष्टता केवल इस बात में नहीं है कि वह तत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग करता है या तद्भव शब्दों का, उसकी भाषा लोकभाषा के निकट है या शहरी भाषा के पास है, वह सपाट भाषा है अथवा प्रतीकात्मक भाषा है। मेरा विचार है कि काव्यभाषा की सफलता भाव एवं व्यंजना के सन्तुलन में है, कवि के सम्यक् बोध की सम्यक् अभिव्यक्ति में है। सच्ची अनुभूति के अभाव में प्रतीक और विम्ब की बैसाखियाँ कवि को कुछ दूरी तक चला सकती हैं और शायद साहित्य अकादमी के पुरस्कार तक पहुंचा दें। इसी प्रकार महत्वपूर्ण कथ्य के बावजूद अभिव्यंजना पक्ष की दुर्बलता कविता को एक वक्तव्य बनाकर छोड़ सकती है। भाव एवं अभिव्यंजना के सन्तुलन और सम्यक् बोध की सम्यक् अभिव्यक्ति में ही काव्यभाषा की सहजता निहित है। जिस कविता में भाषा की ऐसी सहजता है, वही सहज कविता कही जा सकती है।

काव्यभाषा के संदर्भ में एक और बात उल्लेखनीय है। भाषा की सहजता-सरलता का पर्यायवाची नहीं है। सरलता सापेक्षिक होती है। भाषा के ज्ञाता के लिए जो शब्द सरल है वह अज्ञानी के लिए दुरूह हो सकता है। सरल दीखने वाले शब्द कविता में प्रयुक्त होकर कभी पहेली बन सकते हैं, जैसे कबीर की 'उलटबासियों' तथा सूरदास के दृष्टिकूट पदों के अनेक शब्द। कविता के शब्द का कोई पर्यायवाची नहीं होता। भले ही वह शब्द बोलचाल का हो। कारण यही कि कविता में प्रयुक्त शब्द ही कवि के अभिप्रत अर्थ का संवहन करता है। कविकर्म कोई आसान कर्म नहीं है। तब काव्यभाषा में सहजता को पाना सरलता की खोज नहीं है।

—सुधेश

ग़ज़ल

दौरे खिज़ां में उगता शजर देख रही हूँ,
मैं अपनी इक दुआ का असर देख रही हूँ।
ख्वाबों को मंज़िलें मिलें ये जुस्तजू लिए,
बाक़ी बचा है कितना सफ़र देख रही हूँ।
औरत वो नए दौर की मीरा ही बनेगी,
भेजा हुआ राणा का जहर देख रही हूँ।
सहरा है आज, कल वही दरिया भी बनेगा,
आँखों के समन्दर में लहर देख रही हूँ।
ये ज़िन्दगी है या मेरी ग़ज़ल का शेर,
टूटी कहाँ है इसकी बहर देख रही हूँ।
चेहरे बदल के सामने आते हैं कई बार,
चेहरे पै चेहरों का हुनर देख रही हूँ।
सारे जहाँ के दर्द को ग़ज़लों में ढालकर,
होती है अपनी कैसे गुज़र देख रही हूँ।

डॉ० (श्रीमती) आदर्श मदान
(अजमेर)

मुझको तमाम उम्र ये धोखा दिया गया,
ज़िन्दा नहीं हूँ मैं मुझे समझा दिया गया।
मुझको सज़ा-ए मौत मिली इसका ग़म नहीं,
ये ग़म है मुझसे फ़ैसला लिखवा दिया गया।
देता दिखाई मैं रहा लोगों के जिस्म में,
यूँ मुद्दतों पहले मुझे दफ़ना दिया गया।
जैसे ही परिन्दे ने तका आसमान को,
बाज़ों को पिंजरे खोल के उड़वा दिया गया।
वो शख्स जिसने नींद में तानी थी मुट्ठियाँ,
हाथों को सुबह उसके कटवा दिया गया।
सुकरात मुझमें रहता है ये तब लगा मुझे,
जब ज़हर मेरे सामने रखवा दिया गया।

सुरेन्द्र चतुर्वेदी (अजमेर)

ज़िंदगी फिर-फिर फँसी मँझधार में,
जीत की खुशियाँ मिलीं हर हार में।
दर्द के आँसू छुपा मैं पी गया,
मुस्कराता ही रहा दरबार में।
बात मैं अपनी नहीं, सबकी कहूँ,
पर अकेला पड़ गया तकरार में।
मैं अकेला हूँ अकेला लड़ रहा,
मिल न पाया संघ याकि क़तार में।
धार के सँग तैरते सब लोग हैं,
पर असल पुरुषार्थ उल्टी धार में।
जो ग़लत है, ग़लत ही उसको कहा,
मैं अनाड़ी ही रहा मनुहार में।
सत्यवादी हूँ, सभी नाराज़ हैं,
झूठ कवियों का ज़रूरी प्यार मैं।
चाँद लहरों का मिलन सुंदर, मगर,
शंख घोंघे सीपियाँ भी ज्वार में।
भ्रमर का रोमांस शोषण-सा लगे,
लुप्त कविता सत्य के इज़हार में।

—चिरंजीत (दिल्ली)

फुलबगिया क्या सपना है अपने गाँव में,
कब खुशबू बिखरेगी अपने गाँव में?

रोज़ झोंपड़ी में ही लगती आग है,
कब चाँदनिया चमकेगी अपने गाँव में?

इतने वर्षों से पनघट वीरान है।
कब मीठा जल पहुँचेगा अपने गाँव में?

आज अजनबी सा सहमा-सहमा मन है,
कब हमदर्दी लौटेगी अपने गाँव में?

होंठ मुस्कराने की आदत भूल गये,
मुक्त हँसी कब फूटेगी अपने गाँव में?

जिनसे दगा मिली चाहत के नाम पर,
वे फिर कब गले मिलेंगे अपने गाँव में?

—अंजनी दुबे 'भावुक' (कछार, असम)

हाइकु

मैं और तुम
इतना तो करते
साथ निभाते।

रहे सताते
छोटे-छोटे सवाल
जीवन-भर।

पंख मेरे हैं
उड़ना चाहता हूँ
बन्द पिंजरा।

मुख उदास
क्या इसीलिए टूटा
मन-दर्पण ?

चल सकोगे
बैसाखियों के बल
कितने दिन ?

—मुकेश रावल (आनन्द, गुजरात)

कविताएँ

कहने से वह बात
बस अर्थहीन होगी
बिना कहे भी समझो
वही अर्थ पा जाये।

—जोगेश्वरी साहू (बालाघाट, म० प्र०)

क्रान्ति आती नहीं
दावत के निमन्त्रण-सी।
पूर्वज एक छाते के तले सन्तुष्ट

हम एक झण्डे के तले भी लड़ रहे।
मेरा बच्चा
पैदा होते ही अंग्रेज़ी बोले
इसीलिए पत्नी को
प्रसूतिहित लन्दन भेजा।

वचन गाँधी
पोशाक खादी
मानस में बसी
विदेशी मेम से शादी।
पर्यावरण
चिन्ता का विषय
मन भला दूषित।

घोंसला भी
एक घर
पर आँगन रहित।
अन्दर नौकर
बाहर कुत्ता
यही नये घर की है सत्ता।

उन दिनों सर्वव्यापक विष्णु
इन दिनों विषाणु।

—कुंजुण्णि

मलयालम से अनुवाद—के० जी० बालकृष्ण पिल्लै (तिरुअनन्तपुरम)

(1)

शासन है
एक तन्त्र,
भाषण है
एक मन्त्र,
चीखती जनता है क्या षड्यन्त्र ?
प्यारे ! यही तो लोकतन्त्र।

(2)

वह न डाकू है
न उसका बेटा
दोनों ने मिलकर
दूध में पानी फेंटा ।

(3)

संसद
एक बड़ी आरामगाह
उसके बाहर
फैला श्मशान ।

(4)

लोकतन्त्र
नीचे से ऊपर तक
वेश्या का घर ।
कोई आये कोई जाये
कोई लूटे कोई खाये,
जनता से जनता का मिलन ।

(5)

चीखने से
नहीं सहमेगा बलात्कारी
हम केवल तमाशबीन हैं ।
आँखें फेर लो अपनी
या उन्हें दे आओ किसी को
फिर कभी न देखना पड़े
अपना धूमिल चेहरा ।

चीखों को
मत बदलने दो आँसुओं में
उन्हें अंगार बना
बिखेर दो लाल मिट्टी में

कम-से-कम कुछ तो उगेगा
चाहे नागफनी।

(6)

चेहरों पर खिंची रेखाएँ
उनमें उभरे प्रश्न
जिनकी भीड़ में
सबकी ज़बाँ पै ताले लटक आये।
क्या अनावश्यक भीड़ है जनता
जो पहाड़ों को
सिर पर उठाये
सड़कों पै उतर आई?
प्रश्न टैनिस गेंद से
यदि उछलते ही रहे
संसद कचहरी बीच
तो वे होंगे तय
लाल सड़कों पर।

—अंजनी दुबे 'भावुक' (कछार, असम)

कवियों से

चुनी गई सहज कविताओं के मूल्यांकन का क्रम इस अंक से शुरू किया जा रहा है। आगामी प्रत्येक अंक में कम-से-कम एक कवि की सहज कविताएँ आलोचकीय मूल्यांकन सहित प्रकाशित की जाएँगी।

युवा कवियों से दस-दस सहज कविताएँ भेजने का अनुरोध है। उनसे वार्षिक सदस्य बनने और अपने मित्रों को सदस्य बनवाने का भी आग्रह है। काव्य-संग्रह, कविता-केन्द्रित आलोचनात्मक पुस्तकें, पत्रिकाएँ समीक्षा के लिए आमन्त्रित हैं।

—सम्पादक

दोहे

हरसिंगार महके कहीं, दहके कहीं पलाश,
अंगारों के हर तरफ़, फैले हैं भुजपाश।
बियाबान वनखंड में, डगर तपी क्या खूब,
नंगे पैरों के तले, न थी मुलायम दूब।
तुम तो लेने को कमल, धँसे ताल के बीच,
लौटे खाली हाथ ही, लिये हाथ में कीच।
सोच-सोचकर तथ्य यह, मन क्यों हुआ उदास,
घर होता है प्यास का, प्रायः जल के पास।
पिंजरे से तू ने किया, पंछी को आज़ाद,
बिना पंख जाये कहाँ, बता अरे सैय्याद।
धीरे-धीरे खो दिये, हमने अपने मित्र,
शून्य भित्ति पर हम हुए, बिना रंग के चित्र।
खिड़की के उस पार है, जाली शीशेदार,
जाली में से झाँक तू, बाहर का संसार।
उसके घर से उठ रही, देख धुएँ की रेख,
अपने घर में भी कभी, आग लगा के देख।
अन्त भगीरथ का हुआ कितना करुण, अजीब,
गंगाजल के बिन्दु दो, उसे न हुए नसीब।
बरस रहे हर ओर से, जिस पर तीखे तीर,
होगा कोई भीष्म ही, या पैग़म्बर, पीर।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' (ग़ाज़ियाबाद)

अपने सुख पर मर मिटे दुख में सब बेपर्द,
दूजे का जो दुख सहें ऐसे कितने मर्द।
दुख मारे पर जी उठे पिंजर में से मर्द,
बिस्तर के ही शूर जो जीवन में नामर्द।
जीवन-सुख की खोज में पाया बस सिरदर्द,
शीश उठाकर चला तो दिल ने पाया दर्द।
महानगर यह कौन-सा इंच-इंच बेदर्द,
पत्थर पत्थर देवता कहीं नहीं हमदर्द।

—सुधेश

सहज कविता की परम्परा

इस सदी के छठे दशक के मध्याह्न में हिन्दी काव्य के क्षेत्र में एक नये आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ जिसे सहज कविता संज्ञा के नाम से काव्य-जगत् में पहचान प्राप्त हुई। इस आन्दोलन के सन्दर्भ में प्रथम वक्तव्य अप्रैल 1967 ई० में दिल्ली में आयोजित साहित्यिकी की एक काव्य-संध्या में डॉ० रवीन्द्र भ्रमर के शब्दों से मिलता है—"गीत-अगीत के पचड़े से निकलकर सहज सार्थक काव्य रचना की ओर ध्यान दिया जाना चाहिए···"[1] नवगीत के प्रवर्तक के द्वारा सहज कविता का पक्ष लेना काफी विवाद का कारण भी रहा परन्तु सहज कविता के सन्दर्भ में उनका वक्तव्य महत्त्वपूर्ण था।

सहज कविता पुरानी, थोथी और हीनतापूर्ण असहजताओं एवं असामाजिकताओं की प्रवृत्ति के विरोधस्वरूप उभरी। इन कवियों ने कविता को समाज से परे की वस्तु नहीं बनाया बल्कि कविता में युग संघर्ष और नवीनताओं को लाते हुए उसके सहज रूप को सुरक्षित रखा जिसके कारण काव्य, काव्य कहलाने का अधिकारी बनता है। सहज कविता के सन्दर्भ में डॉ० रवीन्द्र भ्रमर ने बड़े स्पष्ट रूप में अपने विचारों को इस प्रकार रखा है—"यह जो सहज की माँग है सरलता या सुविधा की माँग नहीं है। इसे युग-जीवन से जटिलता और संघर्षों से पलायन मान लेने की धारणा पूर्वग्रहयुक्त और अवैज्ञानिक होगी। रचनागत परिप्रेक्ष्य में सहज का दायित्व अनुभूति और अभिव्यक्ति की अनपेक्षित कृत्रिमताओं से बचने का दायित्व है जो अपने-आप में कला-साधना का प्रतिमान बनता है। प्रस्तुत सन्दर्भ में सहज शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ लेना होगा। सहजायते इति सहजः अर्थात जो रचना यथार्थ अनुभूति संवेग के साथ वाणी के मूर्त माध्यम से जन्म लेती है वह सहज है। सहज की माँग व्यष्टिमूलक होते हुए भी समाजसापेक्ष है। ऐसी कोई भी अभिव्यक्ति अथवा भाव संरचना जिससे मानव की आस्था और मर्यादा के विघटन का बोध होता है असहज और अस्वाभाविक कही जाती है। जिसे सहज होना है उसे सार्थक भी होना है। सहज कविता वस्तुतः कविता की दिशा में एक मंगलकारी प्रस्थान है।[2]

सहज कविता के सन्दर्भ में हिन्दी के अनेक विद्वानों ने ये विचार प्रकट किये हैं।

नन्ददुलारे बाजपेयी ने लिखा—"सहज कविता वास्तव में अनुभूतिसापेक्ष

---

1. सहज कविता, खण्ड-1, सम्पादक डॉ० रवीन्द्र भ्रमर : पृ० 87, शाकुन्तलम प्रकाशन, अलीगढ़—वर्ष 1968 ई० वितरक लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद।
2. सहज कविता : अन्तिम पृष्ठ से।

अकृत्रिम कविता ही है। वर्तमान कृत्रिम कविता के बीच इसका आगमन उचित दिशा का प्रयास माना जायेगा। सहज कविता को आन्दोलन के रूप में निषेध या विद्रोह की भूमि पर ले जाने को आवश्यकता नहीं है। युग की सार्थक कविता के आकलन एवं मूल्यांकन के लिए सार्थक प्रयत्न किया जाना चाहिए।"[1] हजारीप्रसाद द्विवेदी भी कविता के क्षेत्र में सहजता के समर्थक हैं जैसा कि उनके कथन से स्पष्ट है—"हमारे कवि इधर उन्मुख हों तो अच्छा है। काव्य-रचना कठिन कर्म है। अनुभूति और अभिव्यक्ति की सहजता के बिना सिद्धि प्राप्त नहीं होती। कृत्रिम आरोपित अनुभूति रचना के स्तर पर प्रायः गूढ़ रूप में प्रतिफलित होती है और तब काव्य का मूल उद्देश्य ही खण्डित हो जाता है।"[2] श्री कुन्तल कुमार जैन सहज कविता आन्दोलन में भारतीयता को देखते हैं—"सहज कविता किसी मरे हुये विदेशी आन्दोलन का आयात नहीं है। वह आज के वास्तविक युग-बोध को झेलने की क्रिया में उठता हुआ कदम है।"[3] दिनकर सोनवलकर ने लिखा—"सहज कविता से हमारे लेखन को सही संज्ञा मिलती है।"[4] श्री हरीश भादानी ने सहज कविता को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि—"अपने परिवेश की भाषा में सम्प्रेषित होने वाली ऐसी अभिव्यक्ति जिसे भाषा खोजनी नहीं पड़ती, जिसे शिल्प के साँचे बनाने नहीं पड़ते और जिसे कविता होना नहीं पड़ता वही सहज कविता है।"[5] कुछ विद्वानों ने सहज कविता को अपनी व्यंग्यपूर्ण वाणी का निशाना बनाया। श्री सुरेन्द्र वर्मा ने इसे अकविता की प्रतिक्रिया मानते हुए लिखा—"यों तो अकविता वाले भी कविता का सहजीकरण करने में विश्वास रखते हैं लेकिन ऐसा लगता है कि जिस सहज कविता की आप बात कर रहे हैं वह अकविता की प्रतिक्रिया है।"[6]

अज्ञेय तो कविता को कृत्रिमता से परिपूर्ण ही मानते हैं तो सहजता कैसे संभव है—"कोई भी कविता सहज नहीं होती बल्कि सब कविता कृत्रिम होती है। जहाँ अनुशासन है, आत्मचेतना है कांक्षित सम्प्रेषण है वहाँ सहजता या अत्यधिक अकृत्रिमता हो कैसे सकती है?"[7]

रामधारी सिंह दिनकर ने सहजता को विवाद का विषय न बनाते हुए यह राय दी—

"कविता में सहजता क्या है लोग इस पर एक मत नहीं होंगे'''पंचायत में कभी भी यह बात तय नहीं होगी कि सहज या अच्छी कविता क्या हो। इस विवाद का शमन वे कवि करेंगे जो अच्छी या सहज कविता लिख सकते हैं।"[8]

—डॉ० भगतसिंह (अलीगढ़)

---

1. सहज कविता-1, पृ० 9
2. सहज कविता-1, पृ० 9
3. वही, पृ० 32
4. वही, पृ० 33
5. वही, पृ० 32
6. वही, पृ० 11
7. वही, पृ० 91
8. वही, पृ० 10

मूल्यांकन

'गीत और गीत'[1] का यह चौथा खण्ड मधुकर गौड़ के सम्पादन में बम्बई से छपा है। इसमें 84 हिन्दी गीतकारों के गीत और 18 लेखकों की आलोचनात्मक टिप्पणियां तथा सम्मतियां सम्मिलित हैं। सन् 1968 से सन् 1994 के बीच 'गीत और गीत' के चार खण्डों का बम्बई से प्रकाशन अपने आप में एक उपलब्धि है। चौथे खण्ड में कुछ उत्कृष्ट गीत पढ़ने को मिले, जिनके रचनाकार हैं उमाश्री, कविता सिंह, गोपाल गर्ग, जगदीश श्रीवास्तव, भारतेन्दु मिश्र, मुकुट सक्सेना, राजेन्द्र अनुरागी, राजेन्द्र तिवारी, राजेन्द्र प्रसादसिंह, राम मनोहर त्रिपाठी, वसु मालवीय, सुरेन्द्र चतुर्वेदी, आदि। ये सब नये गीतकार हैं। जानकी वल्लभ शास्त्री जैसे वरिष्ठ गीतकार का गीत भी इसमें सम्मिलित है।

इस संग्रह के गीतों को पढ़ते हुए लगा कि गीत केवल प्रेम और शृंगार तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि वह जीवन-जगत के यथार्थ को उसकी गहराई और व्यापकता के साथ व्यक्त करने का एक सफल माध्यम बना है। यद्यपि जीवन के कोमल क्षणों की अनुभूतियां गीत में सहज ढंग से व्यंजित होती हैं, तथापि वैयक्तिक तथा सामाजिक संघर्ष के विविध अनुभव भी गीतों में वाणी पा सके हैं। उमाश्री के गीत में जहां स्थूल रोमांस की रंगीन व्यंजना है, वहां कुन्दन सिंह सजल गांव के बदले हुए यथार्थ को सच्चाई के साथ प्रस्तुत करते हैं। बद्री प्रसाद गुप्त और राजेन्द्र तिवारी के गीतों में व्यंग्य की तेज़ धार है।

भाषा और शिल्प के नये प्रयोग इस संग्रह के अनेक गीतों में मिलते हैं। कुछ गीतों पर प्रादेशिक भाषा के शब्दों का प्रभाव भी मिलता है। अनेक प्रादेशिक भाषाओं तथा बोलियों के शब्दों, मुहावरों आदि का प्रयोग स्वागत-योग्य है।

सम्पादकीय के बाद 25 पृष्ठों में दी गई टिप्पणियों से और पृष्ठ 121 से पृष्ठ 142 तक दी गई विज्ञापन नुमा सम्मतियों से गीतों के मूल्यांकन में कोई मदद नहीं मिलती। विज्ञापन मूल्यांकन नहीं होता। अन्त में चौथे खण्ड में सम्मिलित गीतकारों के पते देना उपयोगी होता।

मधुकर गौड़ के इस प्रयास की प्रशंसा करता हूं। इन चार खण्डों से हिन्दी गीतविधा समृद्ध हुई है।

—सम्पादक

---

1. गीत और गीत-4 (गीत संग्रह)—सम्पादक मधुकर गौड़, सार्थक प्रकाशन, डी-3 शान्तिनगर, दत्तमन्दिर रोड, मलाड (पूर्व), बम्बई-400097
प्रथम संस्करण—1994, पृष्ठ-144, मूल्य 60 रुपये

SAHAJ KAVITA, A Hindi quarterly/R. No. 59341/94

दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली सरकार

संस्कृत भवन, राजकीय माध्यमिक विद्यालय परिसर,
वजीरपुर गांव (फेज-1 अशोक विहार) दिल्ली-110052

राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली को सांस्कृतिक राजधानी के रूप में विकसित करने के संकल्पस्वरूप दिल्ली सरकार का प्रथम चरण

(1) दिल्ली के विद्यालयों में राष्ट्रीय गीत 'वन्दे मातरम्' का गायन अनिवार्य ।

(2) दिल्ली के सभी विद्यालयों में नैतिक शिक्षा का अध्ययन-अध्यापन अनिवार्य ।

(3) त्रिभाषा सूत्र में संस्कृत की यथास्थिति बनाये रखने के लिए उच्चतम न्यायालय में याचिका प्रस्तुत करके विजयश्री प्राप्त करना ।

(4) भाषायी संस्कृति को विकसित करने के उद्देश्य से संस्कृत अकादमी को द्विगुणित अनुदान देना, पंजाबी भाषा को द्वितीय भाषा के रूप में प्रतिष्ठापित करना, उर्दू के मदरसों में आधुनिक विषयों के अध्ययन-अध्यापन की व्यवस्था कर उन्हें विकसित करना, सिन्धी अकादमी की स्थापना करना एवं सरकारी कामकाज में हिन्दी का अधिकाधिक प्रयोग करना ।

(5) दिल्ली की सांस्कृतिक धरोहरों को विकसित करना ।

(6) निगमबोध घाट पर गंगा-यमुना के पवित्र जल से सरोवर का निर्माण करना।

(7) हरिद्वार के गंगा घाट के समान दिल्ली में यमुनाघाट का निर्माण करना ।

(8) भारतीय संस्कृति के प्रतीक महापुरुषों की जयन्तियाँ मनाना ।

(9) गोसम्वर्धन हेतु गोशालाओं की स्थापना करना ।

श्रीमती सुशीला शर्मा द्वारा 1335 पूर्वांचल, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली-110067 से प्रकाशित, तरुण प्रिंटर्स 9267 रोहताश नगर, शाहदरा, दिल्ली-32 द्वारा मुद्रित

अवैतनिक सम्पादक डॉ० सुधेश, आवरण—राजेश शर्मा

सहज कविता

अद्यतन कविता की त्रैमासिकी

इस अंक के सहयोगी कवि और लेखक

वेद प्रकाश अमिताभ, आदर्श मदान, सुरेन्द्र चतुर्वेदी,
चिरंजीत, अंजनी दुबे 'भावुक', मुकेश रावल,
कुंजुण्णि, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', भगतसिंह।

अंक-5/जनवरी-मार्च 1995

सम्पादक—डॉ० सुधेश